13. पूर्वोक्त निबंधनों में अपील खारिज की जाती है ।

2011 की अपील सं. 7475, 2011 की सिविल अपील सं. 7474, 2011 की सिविल अपील सं. 7474 और 2011 की सिविल अपील सं. 7476.

2011 की सिविल अपील सं. 7472 में उपर्युक्त पारित आदेश को ध्यान में रखते हुए, अपीलें खारिज की जाती हैं ।

अपीलें खारिज की गईं ।

क.

[2020] 2 उम. नि. प. 111

नल्लापारेड्डी श्रीधर रेड्डी (डा.)

बनाम

आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य

[2019 की दांडिक अपील सं. 1934]

21 जनवरी, 2020

न्यायमूर्ति डी. वाई. चंद्रचूड़ और न्यायमूर्ति ऋषिकेश राय

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 216 – न्यायालय की आरोप में परिवर्तन या परिवर्धन करने की शक्ति – अभियुक्त-अपीलार्थी के विरुद्ध आरोपों के लिए विचारण पूर्ण हो जाना – न्यायालय द्वारा निर्णय आरक्षित रखा जाना – निर्णय सुनाए जाने से पूर्व लोक अभियोजक द्वारा अभियुक्त के विरुद्ध अतिरिक्त आरोप जोड़ने के लिए आवेदन किया जाना – अभियुक्त के विरुद्ध अतिरिक्त आरोप जोड़ा जाना – जहां अभियुक्त के विरुद्ध अतिरिक्त आरोप जोड़ने के लिए प्रस्तुत की गई सामग्री और साक्ष्य से प्रथमदृष्टया मामला बनता है, तो न्यायालय निर्णय सुनाए जाने से पूर्व किसी भी प्रक्रम पर आरोपों में

परिवर्तन या परिवर्धन करने के लिए सशक्त है ।

इस अपील के तथ्य इस प्रकार हैं कि अभियुक्त-अपीलार्थी और उसके माता-पिता के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 498-क के साथ-साथ दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 की धारा 3 और 4 के अधीन अपराधों के लिए एक आरोप पत्र फाइल किया गया था । अन्वेषक अधिकारी ने अपीलार्थी द्वारा अन्य अपराध किए जाने के बारे में अतिरिक्त जानकारी प्राप्त होने पर विचारण न्यायालय से आगे अन्वेषण करने के लिए अनुज्ञा अभिप्राप्त की । शिकायतकर्ता की पुत्री के लिए युनाइटेड किंगडम में डाक्टर के रूप में नौकरी सुनिश्चित करने के लिए 5,00,000/- रुपए की मांग करने के लिए अपीलार्थी के बारे में विभिन्न साक्षियों के दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 161 के अधीन किए गए कथनों के आधार पर अभिकथित रूप से भारतीय दंड संहिता की धारा 406 और 420 के अधीन अपराध कारित करने की बाबत तारीख 12 अप्रैल, 2013 को एक अतिरिक्त आरोप पत्र फाइल किया गया । विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी के विरुद्ध केवल तारीख 30 जून, 2012 के मूल आरोप पत्र में वर्णित भारतीय दंड संहिता की धारा 498-क के साथ-साथ दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3 और 4 के अधीन अपराधों के लिए आरोप विरचित किए । विचारण आरंभ हुआ और साक्ष्य अभिलिखित करने तथा बहस की समाप्ति के पश्चात् मामला तारीख 13 फरवरी, 2017 को निर्णय के लिए आरक्षित रखा गया । लोक अभियोजक द्वारा तारीख 13 फरवरी, 2017 को आरोप में परिवर्तन करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 के अधीन एक आवेदन यह कथन करते हुए फाइल किया गया कि यद्यपि अन्वेषक अधिकारी द्वारा अपीलार्थी को धारा 406 और 420 के अधीन अपराधों के लिए आलिप्त करते हुए तारीख 12 अप्रैल, 2013 को एक अतिरिक्त आरोप पत्र फाइल किया गया था, तो भी विचारण न्यायाधीश द्वारा उन उपबंधों के अधीन आरोप विरचित नहीं किए गए थे । विचारण न्यायालय ने तारीख 21 फरवरी, 2017 को आवेदन मंजूर किया और अपीलार्थी के विरुद्ध धारा 406 और 420 के अधीन आरोप विरचित किए । विचारण न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि न्यायालय के पास केवल तारीख 30 जून, 2012 के मूल आरोप पत्र का परिशीलन करने का अवसर था,

न कि तारीख 12 अप्रैल, 2013 के अतिरिक्त आरोप पत्र पर, जो कि एक अलग पुलिंदे में रखा था । अपीलार्थी ने विचारण न्यायालय के आदेश से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण कार्यवाहियां संस्थित कीं । उच्च न्यायालय के एक एकल न्यायाधीश ने पुनरीक्षण याचिका मंजूर की और अतिरिक्त आरोप विरचित करने वाले विचारण न्यायालय के आदेश को प्रक्रियात्मक अनियमितता के आधार पर अपास्त कर दिया, किंतु विचारण न्यायालय को यह स्वतंत्रता दी कि वह दोनों पक्षों को सुनवाई का अवसर देने और साक्षियों को पुन: बुलाने के पश्चात् कोई अतिरिक्त आरोप, यदि नितांत आवश्यक हो, विरचित करे । विचारण न्यायालय ने दोनों पक्षों की ओर से तर्कों को सुनने और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि भारतीय दंड संहिता की धारा 406 और 420 के अधीन अपराधों के संघटक सिद्ध नहीं हुए हैं और तारीख 11 अक्तूबर, 2017 के आदेश द्वारा अतिरिक्त आरोपों को विरचित करने के लिए आवेदन को नामंजूर कर दिया । चतुर्थ प्रत्यर्थी ने विचारण न्यायालय के उपरोक्त आदेश के विरुद्ध उच्च न्यायालय के समक्ष एक पुनरीक्षण याचिका फाइल की । उच्च न्यायालय के एक एकल न्यायाधीश ने पुनरीक्षण याचिका मंजूर की और विचारण न्यायालय के आदेश को अपास्त कर दिया । अभियुक्त अपीलार्थी द्वारा उच्च न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – अभिलेख से यह स्पष्ट है कि पूर्ववर्ती अपर कनिष्ठ सिविल न्यायाधीश ने अतिरिक्त आरोप पत्र का परिशीलन किया था और भारतीय दंड संहिता की धारा 406 और 420 के अधीन अपराधों का संज्ञान लिया था । तथापि, आरोप विरचित करने के समय अतिरिक्त आरोप पत्र को न्यायालय के ध्यान में नहीं लाया गया था और अपीलार्थी के विरुद्ध धारा 406 और 420 के अधीन आरोप विरचित करने पर विचार नहीं किया गया था । इसलिए अपीलार्थी को केवल भारतीय दंड संहिता की धारा 498-क के साथ-साथ दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3 और 4 के अधीन अपराधों के लिए आरोपित किया गया था । जब लोक अभियोजक द्वारा तारीख 13 फरवरी, 2017 को दंड प्रक्रिया संहिता

की धारा 216 के अधीन एक आवेदन फाइल किया गया तो विचारण न्यायाधीश के ध्यान में लाया गया कि धारा 406 और 420 के अधीन आरोप विरचित नहीं किए गए थे । धारा 216 दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय 17 में है । धारा 216 के उपबंधों के अधीन, न्यायालय निर्णय सुनाए जाने से पूर्व किसी समय भी आरोप में परिवर्तन या परिवर्धन करने के लिए प्राधिकृत है । जब कभी ऐसा परिवर्तन या परिवर्धन किया जाता है, तो इसे अभियुक्त को पढ़कर सुनाया और समझाया जाना चाहिए । उपधारा (1) में "आरोप में परिवर्धन कर सकता है" वाक्यांश में नए आरोप को परिवर्धित करना भी सम्मिलित है । इस उपबंध में विचारण के दौरान अभिलेख पर लाई गई सामग्री के आधार पर किसी आरोप में परिवर्तन या परिवर्धन करना समर्थ बनाया गया है । धारा 216 में यह उपबंधित है कि परिवर्तन या परिवर्धन "निर्णय सुनाए जाने से पूर्व किसी भी समय" किया जाना चाहिए । उपधारा (3) में यह उपबंधित है कि यदि आरोप में परिवर्तन या परिवर्धन से अभियुक्त पर उसकी प्रतिरक्षा में या अभियोजक पर मामले के संचालन में प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है, तो न्यायालय विचारण को ऐसे आगे चला सकता है मानो अतिरिक्त या आनुकल्पिक आरोप मूल आरोप है । उपधारा (4) में एक ऐसी स्थिति अनुध्यात है जहां आरोप में परिवर्धन या परिवर्तन से अभियुक्त पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा और न्यायालय को या तो नए सिरे से विचारण करने का निदेश देने या विचारण को इतनी अवधि के लिए स्थगित करने के लिए सशक्त किया गया है, जितनी उस प्रतिकूल प्रभाव को कम करने के लिए आवश्यक है, जिसके अभियुक्त पर पड़ने की संभावना है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 217 साक्षियों को तब पुन: बुलाने के संबंध में है, जब न्यायालय द्वारा विचारण प्रारंभ होने के पश्चात् आरोप में परिवर्तन या परिवर्धन किया जाता है । यह स्पष्ट है कि धारा 216 में न्यायालय को किसी आरोप में परिवर्तन या तब्दीली करने की अनन्य और व्यापक स्तर की शक्ति प्रदान की गई है । उपधारा (1) में प्रयुक्त "निर्णय सुनाए जाने से पूर्व किसी भी समय" शब्दों का प्रयोग न्यायालय को यहां तक कि साक्ष्य, बहस पूर्ण हो जाने और निर्णय आरक्षित रखने के पश्चात् भी आरोपों में परिवर्तन या परिवर्धन करने की अपनी शक्ति का प्रयोग करने के लिए सशक्त करते हैं । किसी आरोप में परिवर्तन या परिवर्धन तब किया जा सकता है,

यदि न्यायालय की राय में, आरोप विरचित करने में लोप हुआ है या अभिलेख पर लाई गई सामग्री की प्रथमदृष्टया परीक्षा करने के उपरांत इससे न्यायालय अभिकथित अपराध का गठन करने वाले तथ्यात्मक संघटकों की विद्यमानता के बारे में एक उपधारणात्मक राय बनाने के लिए प्रेरित हुआ है । न्यायालय द्वारा किसी आरोप में परिवर्धन या परिवर्तन करने का विनिश्चय करते समय अपनाई जाने वाली कसौटी यह है कि अभिलेख पर लाई गई सामग्री का अभिकथित अपराध के संघटकों से प्रत्यक्ष जुड़ाव या संबंध होने की आवश्यकता है । आरोप के जुड़ने से अतिरिक्त आरोपों के लिए केवल विचारण का प्रारंभ होता है, उसके उपरांत, साक्ष्य के आधार पर यह अवधारित किया जाना चाहिए कि क्या अभियुक्त को अतिरिक्त आरोप के लिए दोषसिद्ध किया जा सकता है या नहीं । न्यायालय द्वारा धारा 216 के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग न्यायसम्मत रूप से किया जाना चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि अभियुक्त पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े और उसका ऋजु विचारण किया जाए । न्यायालय की शक्ति पर एकमात्र प्रतिबंध आरोपों के परिवर्धन या परिवर्तन से अभियुक्त पर संभाव्यत: पड़ने वाला प्रतिकूल प्रभाव है । तद्नुसार, उपधारा (4) में वहां न्यायालयों द्वारा अपनाए जाने वाले दृष्टिकोण को विहित किया गया है, जहां प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है । उच्च न्यायालय द्वारा अपनाई गई कसौटी सही है और इस न्यायालय के विनिश्चयों के अनुसार है । चतुर्थ प्रत्यर्थी द्वारा इस न्यायालय के समक्ष फाइल किए गए प्रति-शपथपत्र में अभि. सा. 1 (एलडब्ल्यू-1), अभि. सा. 5 (एलडब्ल्यू-12) और अभि. सा. 6 (एलडब्ल्यू-13) के अभिसाक्ष्य और उनकी प्रतिपरीक्षा उपाबद्ध किए गए हैं । अभिलेख पर की सामग्री से इस संभाव्यता का समर्थन होता है कि अपीलार्थी ने अप्रैल, 2006 में अभि. सा. 1, जो शिकायतकर्ता है, से युनाइटेड किंगडम में शिकायतकर्ता की पुत्री के लिए डाक्टर की नौकरी सुनिश्चित करने के लिए 5,00,000/- रुपए की मांग की थी । अभि. सा. 1 के अनुसार, उसने अभि. सा. 5 (अभि. सा. 1 का साला) से रकम उधार ली थी और अभि. सा. 5 और अभि. सा. 6 की मौजूदगी में यह रकम अपीलार्थी को संदत्त की थी । ऐसे साक्ष्य के साक्ष्यिक महत्व पर अपना मत प्रकट किए बिना अभिलेख पर पर्याप्त सामग्री विद्यमान है, जिससे भारतीय दंड संहिता की धारा 406 और 420 के अधीन अपराधों के

संघटकों और जोड़े जाने के लिए ईप्सित आरोपों के साथ संबंध या जुड़ाव दर्शित होता है । साक्षियों द्वारा दिए गए अभिसाक्ष्यों की सत्यता एक विचारण का प्रश्न है और आरोप विरचित करने के समय पर अवधारित किए जाने की आवश्यकता नहीं है । न्यायालय द्वारा साक्ष्य का गुणागुण के आधार पर मूल्यांकन केवल आरोप विरचित किए जाने और विचारण प्रारंभ होने के पश्चात् किया जाना चाहिए । तथापि, आरोप विरचित करने के प्रयोजन के लिए न्यायालय को प्रथमदृष्टया यह अवधारण करने की आवश्यकता होती है कि विचारण प्रारंभ करने के लिए पर्याप्त सामग्री विद्यमान है । उच्च न्यायालय ने अभिलेख पर सामग्री का अवलंब लिया और यह निष्कर्ष निकाला कि भारतीय दंड संहिता की धारा 406 और 420 के अधीन अपराध के संघटक लागू होते हैं । उच्च न्यायालय ने उन कारणों का उल्लेख किया है, जिनके कारण आरोप को जोड़ने के लिए आवश्यकता पड़ी और इसलिए आक्षेपित आदेश में कोई हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है । (पैरा 13, 15, 20, 23 और 24)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2017]	(2017) 3 एस. सी. सी. 347 : **पी. कार्तिकलक्ष्मी** बनाम **श्री गणेश** ;	16
[2016]	(2016) 6 एस. सी. सी. 105 : **अनंत प्रकाश सिन्हा** बनाम **हरियाणा राज्य** ;	10, 17
[2014]	(2014) 11 एस. सी. सी. 538 : **केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो** बनाम **करिमुल्ला ओसान खान** ;	18
[2013]	(2013) 7 एस. सी. सी. 256 : **जसविंदर सैनी** बनाम **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, दिल्ली सरकार)** ;	19
[2011]	(2011) 9 एस. सी. सी. 368 : **सज्जन कुमार** बनाम **केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो ;**	10
[2008]	(2008) 2 एस. सी. सी. 561 : **ओंकार नाथ मिश्रा** बनाम **राज्य** ;	9, 21

[2000] (2000) 4 एस. सी. सी. 168 :
हृदय रंजन प्रसाद वर्मा बनाम **राज्य** । 9

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2019 की दांडिक अपील सं. 1934.

2017 के दांडिक पुनरीक्षण सं. 2712 में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के तारीख 6 मार्च, 2019 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से — सुश्री अनीता शिनॉय, ज्येष्ठ अधिवक्ता, सुश्री संजना थोमस, सुश्री रश्मि नंदकुमार, सर्वश्री वरिन्द्र कुमार शर्मा और विकास गुप्ता

प्रत्यर्थियों की ओर से — सर्वश्री ए. टी. एम. रंगा रामानुजम, ज्येष्ठ अधिवक्ता, एम. ए. चिन्नासामी, (सुश्री) सी. रूबावती, वी. सैंथिल कुमार, पी. राजा राम, टी. मिकंदन, के. इथिराज, महफूज अहसन नाज़की, गौतम पोलंकी और (सुश्री) अनिंदिता मित्रा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति (डा.) डी. वाई. चंद्रचूड़ ने दिया ।

न्या. (डा.) चंद्रचूड़ – यह अपील आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश के निर्णय से उद्भूत हुई है । चतुर्थ प्रत्यर्थी द्वारा अपर कनिष्ठ सिविल न्यायाधीश, सत्तनापल्ली के आदेश के विरुद्ध फाइल की गई पुनरीक्षण याचिका (2017 का पुनरीक्षण मामला सं. 2712) मंजूर की गई थी और अपीलार्थी के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 406 और 420 के अधीन आरोप विरचित करने के लिए निदेश जारी किए गए थे ।

2. चतुर्थ प्रत्यर्थी, जो अपीलार्थी का ससुर है, द्वारा तारीख 10 मार्च, 2011 को एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट यह अभिकथन करते हुए दर्ज की गई थी कि अपीलार्थी और उसके परिवार के सदस्यों ने उसकी पुत्री को धन की मांग और उनके नाम में भूमि अंतरित करने को लेकर तंग किया है । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में यह उल्लेख किया गया कि अपीलार्थी

और चतुर्थ प्रत्यर्थी की पुत्री का वर्ष 2003 में विवाह हुआ था । अभिकथित रूप से, वर्ष 2006 में अपीलार्थी और उसके परिवार ने शिकायतकर्ता की पुत्री को युनाइटेड किंगडम, जहां उसका पति रह रहा था, तब तक ले जाने से मना कर दिया, जब तक कि वह स्त्रीधन संपत्ति को उनके नाम में अंतरित नहीं करती ।

3. तारीख 30 जून, 2012 को अपीलार्थी और उसके माता-पिता के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 498-क के साथ-साथ दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 (संक्षेप में दहेज प्रतिषेध अधिनियम) की धारा 3 और 4 के अधीन अपराधों के लिए एक आरोप पत्र फाइल किया गया था । अन्वेषक अधिकारी ने अपीलार्थी द्वारा अन्य अपराध किए जाने के बारे में अतिरिक्त जानकारी प्राप्त होने पर विचारण न्यायालय से आगे अन्वेषण करने के लिए अनुज्ञा अभिप्राप्त की । शिकायतकर्ता की पुत्री के लिए युनाइटेड किंगडम में डाक्टर के रूप में नौकरी सुनिश्चित करने के लिए 5,00,000/- रुपए की मांग करने के लिए अपीलार्थी के बारे में विभिन्न साक्षियों के दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 161 के अधीन किए गए कथनों के आधार पर अभिकथित रूप से भारतीय दंड संहिता की धारा 406 और 420 के अधीन अपराध कारित करने की बाबत तारीख 12 अप्रैल, 2013 को एक अतिरिक्त आरोप पत्र फाइल किया गया । विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी के विरुद्ध केवल तारीख 30 जून, 2012 के मूल आरोप पत्र में वर्णित भारतीय दंड संहिता की धारा 498-क के साथ-साथ दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3 और 4 के अधीन अपराधों के लिए आरोप विरचित किए । विचारण आरंभ हुआ और साक्ष्य अभिलिखित करने तथा बहस की समाप्ति के पश्चात् मामला तारीख 13 फरवरी, 2017 को निर्णय के लिए आरक्षित रखा गया ।

4. लोक अभियोजक द्वारा तारीख 13 फरवरी, 2017 को आरोप में परिवर्तन करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 के अधीन एक आवेदन यह कथन करते हुए फाइल किया गया कि यद्यपि अन्वेषक अधिकारी द्वारा अपीलार्थी को धारा 406 और 420 के अधीन अपराधों के लिए आलिप्त करते हुए तारीख 12 अप्रैल, 2013 को एक अतिरिक्त आरोप पत्र फाइल किया गया था, तो भी विचारण न्यायाधीश द्वारा उन

उपबंधों के अधीन आरोप विरचित नहीं किए गए थे । विचारण न्यायालय ने तारीख 21 फरवरी, 2017 को आवेदन मंजूर किया और अपीलार्थी के विरुद्ध धारा 406 और 420 के अधीन आरोप विरचित किए । विचारण न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि न्यायालय के पास केवल तारीख 30 जून, 2012 के मूल आरोप पत्र का परिशीलन करने का अवसर था, न कि तारीख 12 अप्रैल, 2013 के अतिरिक्त आरोप पत्र पर, जो कि एक अलग पुलिंदे में रखा था । अपीलार्थी ने विचारण न्यायालय के आदेश से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण कार्यवाहियां संस्थित कीं ।

5. तारीख 1 जून, 2017 को उच्च न्यायालय के एक एकल न्यायाधीश ने पुनरीक्षण याचिका (2017 का दांडिक पुनरीक्षण मामला सं. 661) मंजूर की और अतिरिक्त आरोप विरचित करने वाले विचारण न्यायालय के आदेश को प्रक्रियात्मक अनियमितता के आधार पर अपास्त कर दिया, किंतु विचारण न्यायालय को यह स्वतंत्रता दी कि वह दोनों पक्षों को सुनवाई का अवसर देने और साक्षियों को पुन: बुलाने के पश्चात् कोई अतिरिक्त आरोप, यदि नितांत आवश्यक हो, विरचित करे ।

6. विचारण न्यायालय ने दोनों पक्षों की ओर से तर्कों को सुनने और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि भारतीय दंड संहिता की धारा 406 और 420 के अधीन अपराधों के संघटक सिद्ध नहीं हुए हैं और तारीख 11 अक्तूबर, 2017 के आदेश द्वारा अतिरिक्त आरोपों को विरचित करने के लिए आवेदन को नामंजूर कर दिया । चतुर्थ प्रत्यर्थी ने विचारण न्यायालय के उपरोक्त आदेश के विरुद्ध उच्च न्यायालय के समक्ष एक पुनरीक्षण याचिका फाइल की ।

7. तारीख 6 मार्च, 2019 को उच्च न्यायालय के एक एकल न्यायाधीश ने पुनरीक्षण याचिका (2017 का दांडिक पुनरीक्षण मामला सं. 2712) मंजूर की और विचारण न्यायालय के आदेश को अपास्त कर दिया । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि विचारण न्यायालय ने धारा 216 के अधीन आवेदन को नामंजूर करते समय यह निष्कर्ष निकालने के लिए कारण प्रकट नहीं किए कि धारा 406 और

420 के संघटक लागू नहीं होते हैं और विचारण के दौरान आरोपों में परिवर्तन करने की ईप्सा न करने की अभियोजन पक्ष की चूकों का ही उल्लेख किया । उच्च न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा 406 और 420 के अधीन अतिरिक्त आरोपों को विरचित करने का निदेश देते समय अन्वेषण के दौरान अभिलेख पर लाए गए साक्षियों के कथनों का मूल्यांकन किया और तारीख 12 अप्रैल, 2013 को फाइल किए गए अतिरिक्त आरोप पत्र को निर्दिष्ट किया ।

8. उच्च न्यायालय के तारीख 6 मार्च, 2019 के आदेश से व्यथित होकर अपीलार्थी ने संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन इस न्यायालय में समावेदन किया है ।

9. अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाली विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल सुश्री अनिता शिनॉय ने निम्नलिखित दलीलें दी हैं :–

(क) आरोप में परिवर्तन करने के लिए धारा 216 के अधीन आवेदन कार्यवाहियों में अनावश्यक रूप से विलंब करने के लिए साशय निर्णय सुनाने की तारीख को फाइल किया गया था ;

(ख) चतुर्थ प्रत्यर्थी द्वारा फाइल की गई तारीख 10 मार्च, 2011 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में शिकायतकर्ता की पुत्री के लिए नौकरी सुनिश्चित करने हेतु अपीलार्थी द्वारा 5,00,000/- रुपए की मांग करने या उसे संदाय करने का कोई उल्लेख नहीं है । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में केवल भारतीय दंड संहिता की धारा 498-क और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 4 के अधीन अभिकथित अपराधों की बाबत तथ्यों का उल्लेख है ।

(ग) चतुर्थ प्रत्यर्थी और उसकी पुत्री दोनों डाक्टर होने के कारण इस बात से अभिज्ञ हैं कि युनाइटेड किंगडम में डाक्टर की नौकरी प्रवेश परीक्षा उत्तीर्ण किए बिना प्राप्त नहीं की जा सकती है । तदनुसार, नौकरी सुनिश्चित करने के लिए अपीलार्थी को 5,00,000/- रुपए का संदाय करने का प्रश्न उद्भूत नहीं होता है ।

(घ) अभि. सा. 6, जो चतुर्थ प्रत्यर्थी का मित्र है, एक हितबद्ध साक्षी है, क्योंकि वे पिछले पच्चीस वर्षों से मित्र हैं;

(ङ) अभि. सा. 5, जो चतुर्थ प्रत्यर्थी का साला है, एक हितबद्ध साक्षी है और प्रतिपरीक्षा के दौरान वह उस तारीख, माह और वर्ष का उल्लेख नहीं कर सका था, जिसको अभिकथित रकम चतुर्थ प्रत्यर्थी को अपीलार्थी को संदाय करने के लिए संदत्त की गई थी । यह उपदर्शित करने के लिए कोई दस्तावेजी सामग्री नहीं है कि चतुर्थ प्रत्यर्थी ने अभि. सा. 5 से धन उधार लिया था ; और

(च) धारा 406 और 420 के संघटकों को पूरा नहीं किया गया है । आरोप विरचित करने के प्रक्रम पर न्यायालय से यह प्रत्याशा नहीं की जाती है कि वह अभिलेख पर सामग्री के साक्ष्यिक महत्व पर गहराई से विचार करे । न्यायालय के लिए केवल इस बात की आवश्यकता होती है कि क्या यह उपधारणा करने के लिए आधार है कि अपराध कारित किया गया है, ओंकार नाथ मिश्रा **बनाम** राज्य (2008) 2 एस. सी. सी. 561 वाला मामला देखें) । छल करने और मात्र किसी संविदा के भंग के बीच स्पष्ट विभेद है । यह उत्प्रेरित करने के समय पर अभियुक्त के आशय पर निर्भर करता है, जिसे उसके पश्चात्वर्ती आचरण द्वारा आंका जा सकता है । किसी व्यक्ति को छल करने का दोषी ठहराने के लिए वचन देते समय कपटपूर्ण या बेईमान आशय विद्यमान होना दर्शित करना आवश्यक है, हृदय रंजन प्रसाद वर्मा **बनाम** राज्य (2000) 4 एस. सी. सी. 168 वाला मामला देखें ।

10. दूसरी ओर चतुर्थ प्रत्यर्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान ज्येष्ठ काउंसेल श्री ए. टी. एम. रंगा रामानुजम ने यह दलील दी कि :–

(क) चतुर्थ प्रत्यर्थी का आशय विनिश्चय सुनाने में विलंब करने का नहीं था । अतिरिक्त आरोप पत्र और संज्ञान लेने का आदेश वर्ष 2013 से विचारण न्यायालय के समक्ष था । अतिरिक्त आरोप पत्र पर मजिस्ट्रेट का ध्यान नहीं गया । क्योंकि यह एक अलग डॉकेट में रखा हुआ था ;

(ख) न्यायालय द्वारा निर्णय सुनाने से पूर्व किसी भी समय उपलब्ध सामग्री या विचारण के दौरान बाद में अभिलेख पर लाई

गई सामग्री के आधार पर आरोप में परिवर्तन किया जा सकता है । अनंत प्रकाश सिन्हा **बनाम** हरियाणा राज्य (2016) 6 एस. सी. सी. 105 वाला मामला देखें । प्रस्तुत मामले में, अन्वेषक अधिकारी ने अतिरिक्त आरोप पत्र अन्वेषण के दौरान उसे भारतीय दंड संहिता की धारा 406 और 420 के अधीन अपराधों के संबंध में जानकारी प्राप्त होने के पश्चात् ही फाइल किया था । यद्यपि, अपीलार्थी को आरंभ में तारीख 30 जून, 2012 को मूल आरोप पत्र के अनुसरण में आरोपित किया गया था, तो भी अभिलेख पर बाद में लाए गए साक्ष्य से न्यायालय आरोप में परिवर्तन करने से निर्बंधित नहीं है; और

(ग) आरोप विरचित करने के समय, यदि न्यायालय उसके समक्ष प्रस्तुत सामग्री के आधार पर अपराध का गठन करने वाले संघटकों की विद्यमानता के संबंध में उपधारणा करने के लिए समर्थ हो जाता है, तो यह पर्याप्त है । न्यायालय के लिए उसके समक्ष प्रस्तुत की गई सामग्री की विश्वसनीयता, सत्यता या साक्ष्यिक महत्व का विश्लेषण करना आवश्यक नहीं है । सज्जन कुमार **बनाम** केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो (2011) 9 एस. सी. सी. 368 वाला मामला देखें ।

11. हमें परस्पर विरोधी दलीलों पर विचार करना है ।

12. प्रस्तुत मामले में, अन्वेषक अधिकारी ने अपीलार्थी द्वारा धारा 406 और 420 के अधीन अभिकथित अपराधों के कारित करने के बारे में अतिरिक्त जानकारी प्राप्त होने पर आगे अन्वेषण करने के लिए अनुज्ञा अभिप्राप्त की । साक्षियों के दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन अभिलिखित किए गए कथनों से यह उपदर्शित होता है कि अपीलार्थी ने शिकायतकर्ता की पुत्री को युनाइटेड किंगडम में डाक्टर की नौकरी सुनिश्चित करने के लिए 5,00,000/- रुपए की मांग की थी । अन्वेषण के पश्चात् अपीलार्थी के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 406 और 420 के अधीन अपराधों के लिए तारीख 12 अप्रैल, 2013 को एक अतिरिक्त आरोप पत्र फाइल किया गया था । यह बात चतुर्थ प्रत्यर्थी द्वारा इस न्यायालय के समक्ष फाइल किए गए प्रति-शपथपत्र से

स्पष्ट होती है, जिसमें अपर कनिष्ठ सिविल न्यायाधीश, सत्तनापल्ली का डॉकेट आदेश अंतर्विष्ट है । तारीख 16 अगस्त, 2013 के आदेश में यह कहा गया था :–

> "..... अन्वेषक अधिकारी द्वारा सहायक लोक अभियोजक के माध्यम से अतिरिक्त आरोप पत्र फाइल किया गया । यह मामला अभियुक्त-1 से अभियुक्त-3 के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 498-क और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 4 के अधीन तारीख 28 सितंबर, 2012 को फाइल पर लिया गया था । अतिरिक्त आरोप पत्र और अभिलेख पर उपलब्ध अन्य सामग्री का परिशीलन किया । अपर लोक अभियोजक को सुना । अभियुक्त के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 406 और 420 भी फाइल पर लेने के लिए यह एक उपयुक्त मामला है । तारीख 16 सितंबर, 2013 को बुलाया जाए ।"
>
> (बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

तारीख 13 फरवरी, 2017 के आदेश में यह कहा गया है :–

> ".....प्रस्तुत मामले में, आरंभ में आरोप पत्र भारतीय दंड संहिता की धारा 498-क और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3 और 4 के अधीन अपराधों के लिए फाइल किया गया था और मेरे पूर्वाधिकारी द्वारा उन अपराधों के लिए संज्ञान लिया गया था । अन्वेषक अधिकारी द्वारा बाद में इस मामले में एक अतिरिक्त आरोप पत्र फाइल किया गया था और मेरे पूर्वाधिकारी ने तारीख 16 अगस्त, 2013 को भारतीय दंड संहिता की धारा 406 और 420 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए भी संज्ञान लिया था । किंतु अतिरिक्त आरोप पत्र फाइल करने के तथ्य को इस न्यायालय के ध्यान में नहीं लाया गया था और अतिरिक्त आरोप पत्र अभिलेख में एक अलग पुलिंदे के रूप में रखा हुआ था । इसलिए अभियुक्त के विरुद्ध केवल भारतीय दंड संहिता की धारा 498-क और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3 और 4 के अधीन दंडनीय अपराध के लिए आरोप विरचित किए गए थे और भारतीय दंड संहिता की धारा 406 और 420 की अनदेखी हुई थी । यह तथ्य इस

न्यायालय के ध्यान में तब आया, जब न्यायालय ने तर्क सुनने के पश्चात् निपटारा करने के लिए संपूर्ण अभिलेख का परिशीलन किया । तारीख 13 फरवरी, 2017 को विद्वान् सहायक लोक अभियोजक ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 के अधीन भी भारतीय दंड संहिता की धारा 406 और 420 जोड़ने और उन अपराधों के लिए भी आरोप विरचित करने की प्रार्थना करते हुए एक आवेदन फाइल किया.....।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

13. अभिलेख से यह स्पष्ट है कि पूर्ववर्ती अपर कनिष्ठ सिविल न्यायाधीश ने अतिरिक्त आरोप पत्र का परिशीलन किया था और भारतीय दंड संहिता की धारा 406 और 420 के अधीन अपराधों का संज्ञान लिया था । तथापि, आरोप विरचित करने के समय अतिरिक्त आरोप पत्र को न्यायालय के ध्यान में नहीं लाया गया था और अपीलार्थी के विरुद्ध धारा 406 और 420 के अधीन आरोप विरचित करने पर विचार नहीं किया गया था । इसलिए अपीलार्थी को केवल भारतीय दंड संहिता की धारा 498-क के साथ-साथ दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3 और 4 के अधीन अपराधों के लिए आरोपित किया गया था । जब लोक अभियोजक द्वारा तारीख 13 फरवरी, 2017 को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 के अधीन एक आवेदन फाइल किया गया तो विचारण न्यायाधीश के ध्यान में लाया गया कि धारा 406 और 420 के अधीन आरोप विरचित नहीं किए गए थे ।

14. विवाद का न्यायनिर्णयन करने के लिए, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 को निर्दिष्ट करना आवश्यक है :–

"216. न्यायालय आरोप परिवर्तित कर सकता है – (1) कोई भी न्यायालय निर्णय सुनाए जाने से पूर्व किसी समय भी आरोप में परिवर्तन या परिवर्धन कर सकता है ।

(2) ऐसा प्रत्येक परिवर्तन या परिवर्धन अभियुक्त को पढ़कर सुनाया और समझाया जाएगा ।

(3) यदि आरोप में किया गया परिवर्तन या परिवर्धन ऐसा है

कि न्यायालय की राय में विचारण को तुरंत आगे चलने से अभियुक्त पर अपनी प्रतिरक्षा करने में या अभियोजक पर मामले के संचालन में कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना नहीं है, तो न्यायालय ऐसे परिवर्तन या परिवर्धन के पश्चात् स्वविवेकानुसार विचारण को ऐसे आगे चला सकता है मानो परिवर्तित या परिवर्धित आरोप ही मूल आरोप है ।

(4) यदि परिवर्तन या परिवर्धन ऐसा है कि न्यायालय में विचारण को तुरंत आगे चलाने से इस बात की संभावना है कि अभियुक्त या अभियोजक पर पूर्वोक्त रूप से प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा तो न्यायालय या तो नए विचारण का निदेश दे सकता है या विचारण को इतनी अवधि के लिए, जितनी आवश्यक हो, स्थगित कर सकता है ।

(5) यदि परिवर्तित या परिवर्धित आरोप में कथित अपराध ऐसा है, जिसके अभियोजन के लिए पूर्व मंजूरी की आवश्यकता है, तो उस मामले में ऐसी मंजूरी अभिप्राप्त किए बिना कोई कार्यवाही नहीं की जाएगी, जब तक कि उन्हीं तथ्यों के आधार पर जिन पर परिवर्तित या परिवर्धित आरोप आधारित है, अभियोजन के लिए मंजूरी पहले ही अभिप्राप्त नहीं कर ली गई है ।"

15. धारा 216 दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय 17 में है । धारा 216 के उपबंधों के अधीन, न्यायालय निर्णय सुनाए जाने से पूर्व किसी समय भी आरोप में परिवर्तन या परिवर्धन करने के लिए प्राधिकृत है । जब कभी ऐसा परिवर्तन या परिवर्धन किया जाता है, तो इसे अभियुक्त को पढ़कर सुनाया और समझाया जाना चाहिए । उपधारा (1) में "आरोप में परिवर्धन कर सकता है" वाक्यांश में नए आरोप को परिवर्धित करना भी सम्मिलित है । इस उपबंध में विचारण के दौरान अभिलेख पर लाई गई सामग्री के आधार पर किसी आरोप में परिवर्तन या परिवर्धन करना समर्थ बनाया गया है । धारा 216 में यह उपबंधित है कि परिवर्तन या परिवर्धन "निर्णय सुनाए जाने से पूर्व किसी भी समय" किया जाना चाहिए । उपधारा (3) में यह उपबंधित है कि यदि आरोप में परिवर्तन या परिवर्धन से अभियुक्त पर उसकी प्रतिरक्षा में या अभियोजक पर

मामले के संचालन में प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है, तो न्यायालय विचारण को ऐसे आगे चला सकता है मानो अतिरिक्त या आनुकल्पिक आरोप मूल आरोप है । उपधारा (4) में एक ऐसी स्थिति अनुध्यात है जहां आरोप में परिवर्धन या परिवर्तन से अभियुक्त पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा और न्यायालय को या तो नए सिरे से विचारण करने का निदेश देने या विचारण को इतनी अवधि के लिए स्थगित करने के लिए सशक्त किया गया है, जितनी उस प्रतिकूल प्रभाव को कम करने के लिए आवश्यक है, जिससे अभियुक्त पर पड़ने की संभावना है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 217 साक्षियों को तब पुन: बुलाने के संबंध में है, जब न्यायालय द्वारा विचारण प्रारंभ होने के पश्चात् आरोप में परिवर्तन या परिवर्धन किया जाता है ।

16. **पी. कार्तिकलक्ष्मी** बनाम **श्री गणेश**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के दो न्यायाधीशों की पीठ का विनिश्चय ऐसे मामले के संबंध में है, जहां भारतीय दंड संहिता की धारा 376 के अधीन अपराध के लिए विचारण के दौरान भारतीय दंड संहिता की धारा 417 के अधीन अपराधों के लिए एक अतिरिक्त आरोप विरचित करने के लिए धारा 216 के अधीन एक आवेदन फाइल किया गया था । न्यायमूर्ति एफ. एम. इब्राहिम कलिफुल्ला ने किसी आरोप में परिवर्तन या परिवर्धन करने की न्यायालय की शक्ति पर विचार करते हुए यह अभिनिर्धारित किया :–

> "6. ..... दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 में न्यायालय को आरोप में किसी समय भी निर्णय सुनाए जाने से पूर्व परिवर्तन या परिवर्धन करने के लिए सशक्त किया गया है । अब यह सुस्थिर है कि न्यायालय में निहित शक्ति न्यायालय की अनन्य शक्ति है और किसी भी पक्षकार को अधिकार के तौर पर कोई आवेदन फाइल करके ऐसे परिवर्धन या परिवर्तन की ईप्सा करने का कोई अधिकार नहीं है । <u>यह हो सकता है कि यदि आरोप विरचित करने में कोई लोप हुआ है और यदि यह बात अपराध का विचारण करने वाले न्यायालय की जानकारी में आती है तो जैसा कि दंड</u>

[1] (2017) 3 एस. सी. सी. 347.

प्रक्रिया संहिता की धारा 216 में उपबंधित है, यह शक्ति सदैव न्यायालय में निहित है कि वह या तो आरोप में परिवर्तन करे या परिवर्धन करे और न्यायालय को यह शक्ति निर्णय सुनाए जाने से पूर्व किसी भी समय उपलब्ध है । यह न्यायालय के लिए कतिपय ऐसी अनिश्चित परिस्थितियों में, जो उसके ध्यान में आती हैं या उसके ध्यान में लाई जाती हैं, अपनी शक्ति का प्रयोग करने के लिए एक सामर्थ्यकारी उपबंध है । ऐसी किसी स्थिति में, यदि न्यायालय की जानकारी में यह बात आती है कि आरोप में परिवर्तन या परिवर्धन किए जाने की आवश्यकता उद्भूत हुई है, तो वह स्वयंमेव ऐसा कर सकता है और इस प्रयोजन के लिए कोई आदेश पारित किए जाने की आवश्यकता नहीं है । ऐसे परिवर्तन या परिवर्धन के पश्चात् जब अंतिम विनिश्चय किया जाता है, तो पक्षकार विधि के अनुसार अपने-अपने उपचारों के लिए कार्यवाही करने के लिए स्वतंत्र होंगे ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

17. **अनंत प्रकाश सिन्हा** बनाम **हरियाणा राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के दो न्यायाधीशों की पीठ ने एक ऐसी स्थिति पर विचार किया था, जहां भारतीय दंड संहिता की धारा 498क और 323 के अधीन अपराध कारित करने के लिए पति और सास के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 406 के अधीन अतिरिक्त आरोप विरचित करने के लिए एक आवेदन फाइल किया गया था । मुख्य न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा (जैसे कि मुख्य न्यायमूर्ति उस समय थे) ने इस न्यायालय के उन विभिन्न विनिश्चयों को निर्दिष्ट करने के पश्चात् जिनमें किसी आरोप में परिवर्तन करने के लिए न्यायालय की शक्ति पर विचार किया गया था, यह अभिनिर्धारित किया :–

"18. .....न्यायालय आरोप में परिवर्तन या तब्दीली कर सकता है यदि आरोप में त्रुटि है या कुछ छूट गया है । कसौटी यह है, यह अवश्य अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री पर आधारित होना

---

[1] (2016) 6 एस. सी. सी. 105.

चाहिए । यह परिवर्तन शिकायत या प्रथम इत्तिला रिपोर्ट या संलग्न दस्तावेजों या विचारण के दौरान अभिलेख पर लाई गई सामग्री के आधार पर किया जा सकता है । यह निर्णय सुनाए जाने से पूर्व किसी भी समय किया जा सकता है । यह आवश्यक नहीं है कि हर एक परिस्थिति का उल्लेख किया जाए । यह कहना पर्याप्त है, यदि न्यायालय ने अभिलेख पर सामग्री होने के बावजूद कोई आरोप विरचित नहीं किया है, तो उसे किसी आरोप को जोड़ने की अधिकारिता है । इसी प्रकार, उसे आरोप में परिवर्तन करने का प्राधिकार है । जो सिद्धांत ध्यान में रखा जाना चाहिए वह यह है कि मजिस्ट्रेट द्वारा इस प्रकार विरचित किया गया आरोप उसके समक्ष प्रस्तुत की गई सामग्री के अनुसार हो या यदि बाद में अभिलेख पर साक्ष्य आया है । यह नहीं समझा जाना चाहिए कि जब तक साक्ष्य न लाया गया हो, पहले ही विरचित आरोप में परिवर्तन नहीं किया जा सकता है, क्योंकि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 का यह तात्पर्य नहीं है ।

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

19. हमने इसमें ऊपर जो कहा है उसके अतिरिक्त, एक अन्य पहलू भी ध्यान में रखा जाना चाहिए । न्यायालय के लिए यह आबद्धकर है कि वह इस बात पर विचार करे कि अभियुक्त पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े और उसका ऋजु विचारण किया जाए । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 में अंतर्निहित रक्षोपाय किए गए हैं । विचारण न्यायालय का कर्तव्य है कि वह इस बात को ध्यान में रखे कि अभियुक्त पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े क्योंकि इससे ऋजु विचारण पर प्रभाव पड़ने की संभावना होती है .....।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

18. **केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो** बनाम **करिमुल्ला ओसान खान**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने ऐसे मामले पर विचार किया था, जहां विचारण के दौरान अपीलार्थी के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता, विस्फोटक

---

[1] (2014) 11 एस. सी. सी. 538.

अधिनियम, 1984 और आतंकवादी और विध्वंसकारी कार्यकलाप (निवारण) अधिनियम, 1987 के विभिन्न उपबंधों के अधीन आरोपों को जोड़ने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 के अधीन एक आवेदन फाइल किया था । न्यायमूर्ति के. एस. पी. राधाकृष्णन ने न्यायालय की ओर से निर्णय सुनाते हुए यह अभिनिर्धारित किया :–

> "17. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 में विचारण न्यायालय को पर्याप्त शक्ति दी गई है, अर्थात् साक्ष्य के पूर्ण होने, तर्क सुनने और निर्णय आरक्षित रखने के पश्चात् भी वह इस धारा में वर्णित शर्तों के अध्यधीन रहते हुए किसी आरोप में परिवर्तन या परिवर्धन कर सकता है । 'किसी भी समय' और 'निर्णय सुनाए जाने से पूर्व' अभिव्यक्तियों से यह उपदर्शित होता है यह शक्ति अति व्यापक है और समुचित मामलों में, न्याय के हित में, प्रयोग की जा सकती है, किंतु साथ ही साथ न्यायालय को यह भी देखना चाहिए कि उसके आदेश से अभियुक्त पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े ।
>
> 18. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 में सभी न्यायालयों को, जिनमें अभिहित न्यायालय भी है, पहले विरचित किए गए किसी आरोप में निर्णय सुनाए जाने से पूर्व किसी भी समय परिवर्तन या परिवर्धन करने की अधिकारिता प्रदत्त की गई है और उपधारा (2) और (5) में वह प्रक्रिया विहित की गई है जो इस परिवर्धन या परिवर्तन के पश्चात् अनुसरण की जानी चाहिए । यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 216 के अधीन आरोपों में परिवर्तन या उपांतरण करने की शक्ति का प्रयोग केवल तब कर सकते हैं, जब न्यायालय के समक्ष कुछ ऐसी सामग्री विद्यमान हों, जिसका संशोधित, परिवर्धित या उपांतरित किए जाने के लिए ईप्सित आरोपों से कुछ संबंध या जुड़ाव हो । दूसरे शब्दों में, किसी आरोप में परिवर्तन या परिवर्धन अवश्य उस अपराध के लिए किया जाना चाहिए जो न्यायालय के समक्ष विचारण के दौरान अभिलिखित किए गए साक्ष्य द्वारा सिद्ध किया गया है ।"
>
> (बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

19. **जसविंदर सैनी** बनाम **राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, दिल्ली सरकार)**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने इस प्रश्न पर विचार किया था कि क्या विचारण न्यायालय ने उन अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध, जिन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख के अधीन आरोपित किया गया था, भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन आरोप जोड़कर न्यायोचित किया था या नहीं । न्यायमूर्ति टी.एस. ठाकुर (जैसे वे उस समय थे) ने न्यायालय की ओर से निर्णय सुनाते हुए यह अभिनिर्धारित किया :–

> "11. उपरोक्त के पठन मात्र से यह दर्शित होता है कि किसी आरोप में परिवर्तन या परिवर्धन करने की न्यायालय की शक्ति अनिर्बंधित है, बशर्ते ऐसा परिवर्धन और/ या परिवर्तन निर्णय सुनाए जाने से पूर्व किया गया है । धारा 216 की उपधारा (2) से (5) अनुसरण की जाने वाली उस प्रक्रिया के संबंध में है, जब न्यायालय किसी आरोप में परिवर्तन या परिवर्धन करने का विनिश्चय करता है । संहिता की धारा 217 तब साक्षियों को पुन: बुलाने के संबंध में है, जब विचारण प्रारंभ होने के पश्चात् न्यायालय द्वारा आरोप में परिवर्तन या परिवर्धन किया जाता है । उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, निर्णय सुनाए जाने से पूर्व किसी भी समय किसी आरोप में परिवर्धन या परिवर्तन करने की न्यायालय की सक्षमता के बारे में कोई संदेह नहीं हो सकता है । तथापि, धारा 216 में वे परिस्थितियां अनुध्यात नहीं की गई हैं, जिनमें ऐसा परिवर्धन या परिवर्तन किया जा सकेगा । फिर भी यह घिसी-पिटी बात है कि ऐसे परिवर्धन या परिवर्तन का प्रश्न साधारणतया तब उद्भूत होगा, जब या तो न्यायालय ने पहले ही विरचित किए गए आरोप को किसी कारणवश त्रुटिपूर्ण पाया है या विचारण प्रारंभ होने के पश्चात् उस साक्ष्य को ध्यान में रखते हुए, जो न्यायालय के समक्ष आ सकता है, ऐसा परिवर्धन करना आवश्यक समझा है ।"
>
> (बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

---

[1] (2013) 7 एस. सी. सी. 256.

20. उपरोक्त पूर्ण-निर्णयों की कतार से यह स्पष्ट है कि धारा 216 में न्यायालय को किसी आरोप में परिवर्तन या तब्दीली करने की अनन्य और व्यापक स्तर की शक्ति प्रदान की गई है । उपधारा (1) में प्रयुक्त "निर्णय सुनाए जाने से पूर्व किसी भी समय" शब्दों का प्रयोग न्यायालय को यहां तक कि साक्ष्य, बहस पूर्ण हो जाने और निर्णय आरक्षित रखने के पश्चात् भी आरोपों में परिवर्तन या परिवर्धन करने की अपनी शक्ति का प्रयोग करने के लिए सशक्त करते हैं । किसी आरोप में परिवर्तन या परिवर्धन तब किया जा सकता है, यदि न्यायालय की राय में, आरोप विरचित करने में लोप हुआ है या अभिलेख पर लाई गई सामग्री की प्रथमदृष्टया परीक्षा करने के उपरांत इससे न्यायालय अभिकथित अपराध का गठन करने वाले तथ्यात्मक संघटकों की विद्यमानता के बारे में एक उपधारणात्मक राय बनाने के लिए प्रेरित हुआ है । न्यायालय द्वारा किसी आरोप में परिवर्धन या परिवर्तन करने का विनिश्चय करते समय अपनाई जाने वाली कसौटी यह है कि अभिलेख पर लाई गई सामग्री का अभिकथित अपराध के संघटकों से प्रत्यक्ष जुड़ाव या संबंध होने की आवश्यकता है । ऐसे आरोपों के जुड़ने से अतिरिक्त आरोपों के लिए केवल विचारण का प्रारंभ होता है, उसके उपरांत, साक्ष्य के आधार पर यह अवधारित किया जाना चाहिए कि क्या अभियुक्त को अतिरिक्त आरोप के लिए दोषसिद्ध किया जा सकता है या नहीं । न्यायालय द्वारा धारा 216 के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग न्यायसम्मत रूप से किया जाना चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि अभियुक्त पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े और उसका ऋजु विचारण किया जाए । न्यायालय की शक्ति पर एकमात्र प्रतिबंध आरोपों के परिवर्धन या परिवर्तन से अभियुक्त पर संभाव्यत: पड़ने वाला प्रतिकूल प्रभाव है । तद्नुसार, उपधारा (4) में वहां न्यायालयों द्वारा अपनाए जाने वाले दृष्टिकोण को विहित किया गया है, जहां प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है ।

21. अपीलार्थी ने **ओंकार नाथ मिश्रा** बनाम **राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ के विनिश्चय का इस बिंदु को

---

[1] (2008) 2 एस. सी. सी. 561.

सिद्ध करने के लिए अवलंब लिया है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 406 और 420 के संघटक सिद्ध नहीं किए गए हैं । इस न्यायालय ने आरोप विरचित करने के प्रक्रम पर किसी न्यायालय द्वारा किए जाने वाले मूल्यांकन की प्रकृति पर विचार करते हुए यह अभिनिर्धारित किया :–

> "11. यह घिसी-पिटी बात है कि आरोप विरचित करने के प्रक्रम पर न्यायालय से यह अपेक्षा की जाती है कि वह यह पता लगाने के लिए अभिलेख पर सामग्री और दस्तावेजों का मूल्यांकन करे कि क्या उनसे प्रकट होने वाले तथ्यों से, उनके प्रत्यक्ष महत्व पर विचार करने पर, अभिकथित अपराध का गठन करने वाले सभी संघटक प्रकट होते हैं या नहीं । इस प्रक्रम पर, न्यायालय से अभिलेख पर सामग्री के साक्ष्यिक महत्व पर गहराई से विचार करने की प्रत्याशा नहीं की जाती है । जो विचार किए जाने की आवश्यकता है, वह यह है कि क्या यह उपधारणा करने का आधार है कि अपराध कारित किया गया है न कि अभियुक्त को दोषसिद्ध करने के लिए कोई आधार बनता है या नहीं । इस प्रक्रम पर, सामग्री पर आधारित प्रबल संदेह भी, जिससे न्यायालय अभिकथित अपराध का गठन करने वाले तथ्यात्मक संघटकों की विद्यमानता के बारे में एक उपधारणात्मक राय बनाने के लिए प्रेरित होता है, उस अपराध के कारित करने के संबंध में अभियुक्त के विरुद्ध आरोप विरचित करने के लिए न्यायोचित होगा ।"
>
> (बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

22. प्रस्तुत मामले में, उच्च न्यायालय ने अतिरिक्त आरोपों को विरचित करने का निदेश देते हुए अन्वेषण के पश्चात् अभिलेख पर लाई गई सामग्री और लाए गए साक्ष्य का मूल्यांकन किया और यह अभिनिर्धारित किया :–

> "एलडब्ल्यू-1 वास्तविक शिकायतकर्ता का पिता है, जिसका यह कथन है कि उसका दामाद अर्थात् प्रथम अभियुक्त ने वचन दिया था कि वह युनाइटेड किंगडम में उसकी पुत्री की देखभाल करेगा

और यूके में डाक्टर की नौकरी मुहैया कराने का वचन दिया और उक्त प्रयोजन के लिए पांच लाख रुपए का दावा किया और पांच लाख रुपए प्राप्त किए तथा उसकी पुत्री को यूके ले गया । इस साक्षी ने यह कथन किया है कि उसके दामाद ने उसे विश्वास दिलाया और बुजुर्गों की मौजूदगी में पांच लाख रुपए प्राप्त किए । उसने यह कथन किया है कि जब पहले उसकी परीक्षा की गई थी, उसने उसके दामाद द्वारा किए गए छल के बारे में उल्लेख नहीं किया था । एलडब्ल्यू-13, जो एक स्वतंत्र साक्षी है, ने भी एलडब्ल्यू-1 के बयान का समर्थन किया है और कथन किया है कि अभियुक्त-1 द्वारा इस वचन के साथ पांच लाख रुपए प्राप्त किए गए थे कि वह शिकायतकर्ता की पुत्री के लिए डाक्टर की नौकरी सुनिश्चित करेगा । उसने यह कथन किया है कि अभियुक्त-1 ने एलडब्ल्यू-1 के साथ यह कहकर छल किया है कि वह नौकरी दिलवाएगा और पांच लाख रुपए प्राप्त किए । एलडब्ल्यू-14 भी एक स्वतंत्र साक्षी है और उसने एलडब्ल्यू-13 के बयान का समर्थन किया । उसने यह भी कथन किया कि अभियुक्त-1 ने अपनी पत्नी और बालक को भारत में छोड़ा और पांच लाख रुपए लेकर चला गया ।

अतः उपरोक्त तथ्यों से, जो एलडब्ल्यू-13 और 14 द्वारा कथित किए गए हैं, प्रथमदृष्टया, एलडल्ब्यू-1 के इस बयान का समर्थन होता है कि उसने अभियुक्त-1 को इस वचन के आधार पर पांच लाख रुपए दिए थे कि वह उसकी पुत्री को एक नौकरी दिलवाएगा और अभियुक्त-1 ने कोई नौकरी नहीं दिलवाई और उसके साथ छल किया । जब अभियुक्त-1 को रकम नौकरी दिलवाने के वचन पर सौंपी गई थी और जब वह नौकरी दिलवाने में असफल रहा और रकम वापस नहीं की, तो यह मामला बन सकता है कि अभियुक्त-1 का अपनी पत्नी को नौकरी दिलवाने का कोई आशय नहीं था और उसने उस प्रयोजन से भिन्न प्रयोजन के लिए रकम का उपयोग किया, जिसके लिए उसने एलडब्ल्यू-1 से रकम ली थी और यह बात भारतीय दंड संहिता की धारा 406 और

420 के अधीन अपराधों को लागू करने के लिए पर्याप्त है । क्या एलडब्ल्यू-1 के सुधार किए गए बयान में सच्चाई है या नहीं और उसके पूर्ववर्ती कथन में इस बात का उल्लेख न करने में उसकी चूक के लिए क्या कारण रहे थे, इनका विचारण के समय न्यायनिर्णयन किया जा सकता है ।

अभिलेख पर यह भी साक्ष्य है कि अन्वेषक अधिकारी द्वारा फाइल किया अतिरिक्त आरोप पत्र निचले न्यायालय के ध्यान में नहीं लाया गया था, जिसके कारण अतिरिक्त आरोप विरचित नहीं किए जा सके थे ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

23. उच्च न्यायालय द्वारा अपनाई गई कसौटी सही है और इस न्यायालय के विनिश्चयों के अनुसार है । चतुर्थ प्रत्यर्थी द्वारा इस न्यायालय के समक्ष फाइल किए गए प्रति-शपथपत्र में अभि. सा. 1 (एलडब्ल्यू-1), अभि. सा. 5 (एलडब्ल्यू-12) और अभि. सा. 6 (एलडब्ल्यू-13) के अभिसाक्ष्य और उनकी प्रतिपरीक्षा उपाबद्ध किए गए हैं । अभिलेख पर की सामग्री से इस संभाव्यता का समर्थन होता है कि अपीलार्थी ने अप्रैल, 2006 में अभि. सा. 1, जो शिकायतकर्ता है, से युनाइटेड किंगडम में शिकायतकर्ता की पुत्री के लिए डाक्टर की नौकरी सुनिश्चित करने के लिए 5,00,000/-रुपए की मांग की थी । अभि. सा. 1 के अनुसार, उसने अभि. सा. 5 (अभि. सा. 1 का साला) से रकम उधार ली थी और अभि. सा. 5 और अभि. सा. 6 की मौजूदगी में यह रकम अपीलार्थी को संदत्त की थी । ऐसे साक्ष्य के साक्ष्यिक महत्व पर अपना मत प्रकट किए बिना अभिलेख पर पर्याप्त सामग्री विद्यमान है, जिससे भारतीय दंड संहिता की धारा 406 और 420 के अधीन अपराधों के संघटकों और जोड़े जाने के लिए ईप्सित आरोपों के साथ संबंध या जुड़ाव दर्शित होता है ।

24. साक्षियों द्वारा दिए गए अभिसाक्ष्यों की सत्यता एक विचारण का प्रश्न है और आरोप विरचित करने के समय पर अवधारित किए जाने की आवश्यकता नहीं है । न्यायालय द्वारा साक्ष्य का गुणागुण के आधार

पर मूल्यांकन केवल आरोप विरचित किए जाने और विचारण प्रारंभ होने के पश्चात् किया जाना चाहिए । तथापि, आरोप विरचित करने के प्रयोजन के लिए न्यायालय को प्रथमदृष्टया यह अवधारण करने की आवश्यकता होती है कि विचारण प्रारंभ करने के लिए पर्याप्त सामग्री विद्यमान है । उच्च न्यायालय ने अभिलेख पर सामग्री का अवलंब लिया और यह निष्कर्ष निकाला कि भारतीय दंड संहिता की धारा 406 और 420 के अधीन अपराध के संघटक लागू होते हैं । उच्च न्यायालय ने उन कारणों का उल्लेख किया है, जिनके कारण आरोप को जोड़ने के लिए आवश्यकता पड़ी और इसलिए आक्षेपित आदेश में कोई हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है ।

25. तद्नुसार, हम यह अपील खारिज करते हैं । अपर कनिष्ठ सिविल न्यायाधीश, सत्तनापल्ली के समक्ष लंबित कार्यवाहियां जारी रहेंगी ।

26. लंबित आवेदन (आवेदनों) का, यदि कोई है, निपटारा हो जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

जस.